International Journal of Applied Research 2019; 5(2): 276-279

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(2): 276-279
www.allresearchjournal.com
Received: 18-12-2018
Accepted: 21-01-2019

डॉ. कमलेश कुमार सिंह
शोधनिर्देशक, विभागाध्यक्ष, राजनीतिविज्ञान विभाग, के.ए. (पी.जी.) कालेज, कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

युधिष्ठिर सिंह सोलंकी
शोधछात्र, डॉ.बी.आर.अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence Author:
डॉ. कमलेश कुमार सिंह
शोधनिर्देशक, विभागाध्यक्ष, राजनीतिविज्ञान विभाग, के.ए. (पी.जी.) कालेज, कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

राष्ट्रहित में क्षेत्रीय दलों की भूमिका (भारत के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. कमलेश कुमार सिंह एवं युधिष्ठिर सिंह सोलंकी

प्रस्तावना

राष्ट्रीय दलों के प्रति जनता की उदासीनता का फायदा क्षेत्रीय दलों ने उठाया है। ये सभी क्षेत्रीय दल धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र व स्वार्थ पर आधारित होने के कारण देश में साम्प्रदायिकता, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद व अवसरवादिता को बढ़ावा देते हैं और इन्हीं धर्म, जाति, भाषा व क्षेत्रीय हितों जैसे भावनात्मक मुद्दों को आधार बनाकर चुनाव मैदान में उतरते हैं तथा राष्ट्रीय दलों के प्रति निरूत्साहित जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं।[1] ये मुद्दे चूँकि सीधे जनता से जुड़े होते हैं; इसलिये उस क्षेत्र या राज्य की जनता का मत प्राप्त करने में इन क्षेत्रीय दलों को सफलता भी मिलती है। भारतीय राजनीति में ये क्षेत्रीय दल न केवल महत्वपूर्ण ही हैं वरन् केन्द्र सरकार के बनाने व गिराने में एक अहम् भूमिका निभा भी रहे हैं। भारतीय संघवाद को इन्ही क्षेत्रीय दलों ने सही अर्थ प्रदान किया है व राज्यों की स्वायत्ता की रक्षा करते हुये राज्यों के आर्थिक विकास से सम्बन्धित योजनाओं व कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी इन्हीं के कारण सम्भव हो सका है; परन्तु क्षेत्रीय दलों की स्वार्थ भरी राजनीति ने भारतीय राजनीति को अपराधीकरण, अवसरवाद, हिंसा, भ्रष्टाचार और सिद्वान्तहीनता की ओर धकेल दिया है। सम्प्रति राष्ट्रहित को ध्यान मे रखते हुये क्षेत्रीय दलों की बढ़ती महत्वाकाक्षाओं पर अंकुश लगाना आवश्यक है। तभी ये दल अपने निजी स्वार्थो को त्यागकर देश के विकास कार्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकेंगे।

सन् 1996 से जिस प्रकार लोकसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की संख्या बढ़ती जा रही है, उससे यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राजनीति में ये क्षेत्रीय दल न केवल महत्वपूर्ण ही हैं वरन् केन्द्र सरकार के बनाने व गिराने में एक अहम् भूमिका भी निभा भी रहे हैं। इसी कारण इन्हें ''राष्ट्रीय हितों का पोषण करने वाली क्षेत्रीय पार्टी'' कहा जाने लगा है[2]।

भारतीय संघवाद को इन क्षेत्रीय दलों ने सही अर्थ प्रदान किया है व राज्यों की स्वायत्ता की रक्षा करते हुये राज्यों के आर्थिक विकास से सम्बन्धित योजनाओं व कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी इन्हीं के कारण सम्भव हो सका है; किन्तु क्षेत्रीय दलों की स्वार्थ भरी राजनीति ने भारतीय राजनीति को अपराधीकरण, अवसरवाद, हिंसा, भ्रष्टाचार, एवं सिद्वान्तहीनता की ओर धकेल दिया है। इन क्षेत्रीय दलों की बढ़ती महत्वाकाक्षाओं पर अंकुश लगाना आवश्यक है। चुनाव आयोग को भी इस दिशा में आवश्यक कदम उठाना होगा। दलों के मध्य गठबन्धन चुनाव से पूर्व होना चाहिये। बाहर से समर्थन पर रोक, दलीय ध्रुवीकरण को बढ़ावा, आदि कुछ कारगर सुधार करके क्षेत्रीय दलों की बढ़ती शक्तियों को नियमित किया जा सकता है, तभी ये दल अपने निजी स्वार्थो को त्यागकर देश के विकास कार्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सकेंगे।

एक क्षेत्र या राज्यविशेष के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले क्षेत्रीय दल जब राज्य की सीमाओं से निकलकर अपने थोड़े से सांसदों के बल पर राष्ट्रीय सरकार को बनाने व गिराने में अहम भूमिका निभाने लगे तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र का संचालन करने वाली संसद सही अर्थों में जनता की प्रतिनिधि संस्था है[3]।

श्रीमती इन्दिरा गान्धी के कार्यकाल में कॉंग्रेस हाईकमान के पास ही संघ सरकार की सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रित होने लगी। अतः इससे आहत होकर क्षेत्रीय आकांक्षाओं, भाषा, संस्कृति जैसे मुद्दों पर उस समय के क्षेत्रीय दल गठित हुये। नब्बे के दशक में आते–आते क्षेत्रीय दल जाति के आधार पर अपना जनाधार बनाने लगे। इस दौर में जाति धीरे–धीरे प्रमुख होती गयी व मुद्दे गौण होते गये। जातिगत आधार पर बने दलों के कारण कॉंग्रेस का हरिजन, ब्राह्मण, दलित, मुस्लिम गठजोड़ बिखर गया। कॉंग्रेस का जनाधार जितनी तेजी से घटता गया; क्षेत्रीय दलों का जनाधार उतनी ही तेजी से बढ़ता गया। जिस कॉंग्रेस ने 1947 से 1989 के बीच (छठी लोकसभा को छोड़कर) 40–48 प्रतिशत वोट हासिल करके केवल बहुमत के आधार पर लोकसभा की सीटें जीती थीं, वहीं 1989 से 2004 के बीच हुए छह चुनावों में कॉंग्रेस के वोट का हिस्सा लगाातार गिरते हुए 40 प्रतिशत से घटकर 25 प्रतिशत तक रह गया। प्रारम्भ में कॉंग्रेस के जनाधार में आई गिरावट का फायदा भारतीय जनता

पार्टी को प्राप्त हुआ। भाजपा को 1989 में 11 प्रतिशत वोट मिला था; वहीं 1999 के लोकसभा चुनाव में 25 प्रतिशत वोट प्राप्त हुए। सन् 2009 के चुनावों में इसके मतों का प्रतिशत घटकर 19.06 प्रतिशत ही रह गया। साम्यवादी दल की स्थिति में भी निरन्तर गिरावट आती गयी। सन् 1989 में जहाँ उसे 10.2 प्रतिशत मिले थे, वह सन् 2004 व 2009 के चुनावों तक आते–आते यह प्रतिशत मात्र 6 रह गया। इस प्रकार काँग्रेस के जनाधार में आई गिरावट का फायदा अन्य राष्ट्रीय दल अधिक समय तक नहीं उठा सके। जिस जनता दल को सन् 1989 में 18.7 प्रतिशत वोट मिले थे; आज उसका अस्तित्व ही समाप्त प्राय हो गया है।

राष्ट्रीय दलों के प्रति जनता की उदासीनता का फायदा क्षेत्रीय दलों ने उठाया, उन्होंने क्षेत्रीय हितों को अपने चुनावों का आधार बनाया और राष्ट्रीय दलों के प्रति निरूत्साहित जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। सन् 1989 के बाद से भारतीय राजनीति में तीन प्रमुख वृत्तियाँ रही थीं[4]–

1. काँग्रेस का घटता जनाधार।
2. भाजपा व अन्य क्षेत्रीय दलों का उदय।
3. इस उदय से अल्पसंख्यक या गठबन्धन सरकारों का गठन।

नवीं लोकसभा के बाद जिन क्षेत्रीय दलों का बोलबाला रहा वे ज्यादातर भाषा, धर्म व राज्य विषेष की जातिगत अस्मिताओं का प्रतिनिधित्व करती थी। धीरे–धीरे इन दलों का जाति व धर्मों के आधार पर क्षेत्रीय व जातीयकरण होने लगा। 'बहुजन समाज पार्टी' जो पहले एक क्षेत्रीय दल ही थी इसका एक अच्छा उदाहरण है। 1996 से गठबन्धन सरकारों के आने से जातिकृत दलों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुयी है। वर्तमान में हम भारत के क्षेत्रीय दलों को प्रमुख रूप से तीन भागों में बाँट सकते हैं[5]–

1. प्रथम प्रकार के वे क्षेत्रीय दल हैं, जो विचारधारा व लक्ष्यों के आधार पर तो राष्ट्रीय दल हैं परन्तु इनका समर्थन केवल कुछ लक्ष्यों व कुछ मामलों में केवल कुछ ही क्षेत्रों तक सीमित है। जैसे–उत्तरप्रदेश की समाजवादी पार्टी, किसान मजदूर पार्टी, फारवर्ड ब्लाक, क्रान्तिकारी सोशलिष्ट पार्टी आदि।
2. द्वितीय प्रकार के वे क्षेत्रीय दल हैं, जिसमें नेता पहले किसी राष्ट्रीय दल में थे बाद में उन्होंने राष्ट्रीय दल की आन्तरिक गुटबाजी के कारण अपने अहं की रक्षा के लिये, क्योंकि सभी की कथनी व करनी में फर्क था व वे आन्तरिक गुटबन्दी के शिकार थे, अपना अलग–अलग दल बना लिया, जैसे–केरल काँग्रेस, बंगाला काँग्रेस, तेलंगाना प्रजा समिति, तमिल मनिला काँग्रेस, हिमांचल विकास समिति, तृणमूल काँग्रेस। जनता दल जो पहले एक राष्ट्रीय दल था वह समाप्त हो गया और उसके स्थान पर नेताओं ने अपने–अपने अलग क्षेत्रीय दल बना लिये, जैसे– लालू प्रसाद यादव का राष्ट्रीय जनता दल, राम विलास पासवान की लोकजन शाक्ति पार्टी, बीजू जनता दल, नीतिश कुमार की जनता दल (यू)। इन दलों की नीतियाँ उनके संस्थापकों की व्यक्तिगत राय द्वारा प्रभावित होती हैं; इसलिये इनमें प्रतिद्वन्दिता व अवसरवादिता की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है।
3. तीसरे प्रकार के वे क्षेत्रीय दल हैं जो वास्तव में जाति, धर्म, क्षेत्र व सामुदायिक हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं जैसे–तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम, अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम, पंजाब में अकाली दल, महाराष्ट्र में शिवसेना, धर्म के आधार पर मुस्लिम लीग व इण्डियन नेशनल लीग, क्षेत्र के आधार पर असमगण परिषद, झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, तेलंगाना राष्ट्रीय समिति, तेलगुदेशम आदि[6]।

ये सभी क्षेत्रीय दल धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र व स्वार्थ पर आधारित होने के कारण देश में साम्प्रदायिकता, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद व अवसरवादिता को बढ़ावा देते हैं। क्षेत्रीय दलों की राजनीति व उनके एजेन्डे में विदेशनीति, आर्थिकनीति, रक्षानीति के सम्बन्ध में नगण्य दृष्टि होती है। ये दल अपनी सुविधा के अनुसार कभी धर्मनिरपेक्षता के नाम पर काँग्रेस से व कभी काँग्रेस विरोध के नाम पर भाजपा से जुड़ जाते हैं। कभी अकेले राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने के लिये दोनों दलों के साथ निरपेक्षता की नीति अपना लेते हैं।

ये क्षेत्रीय दल धर्म, जाति, भाषा व क्षेत्रीय हितों जैसे भावनात्मक मुद्दों को आधार बनाकर चुनाव मैदान में उतरते हैं। ये मुद्दे चूँकि जनता से सीधे जुड़े हैं; इसलिये उस क्षेत्र या राज्य की जनता अब बड़े राष्ट्रीय दलों के प्रति हुए मोहभंग के कारण इन्हीं क्षेत्रीय दलों को अपना मत देना अधिक पसन्द करती हैं। जैसे–उत्तर प्रदेष में काँग्रेस के हाशिए पर जाने के बाद भारतीय जनता पार्टी को बढ़त न मिलकर समाजवादी पार्टी व बहुजन समाज पार्टी को ही जनता ने पसन्द किया।

ग्यारहवीं लोकसभा के गठन से पूर्व तक क्षेत्रीय दल राज्य स्तर पर ही अधिक प्रभावपूर्ण थे। लोकसभा चुनाव में इनकी शक्ति व प्रभाव अत्यन्त सीमित था। सन् 1996 के बाद से केन्द्र में गठबन्धन सरकारों का जो सिलसिला शुरू हुआ वह आज तक बदस्तूर जारी है। केन्द्र में कोई भी राष्ट्रीय दल इस स्थिति में नहीं है कि वह अपने बहुमत के बल पर एक शक्तिशाली सरकार की स्थापना कर सके। फलस्वरूप अनेक क्षेत्रीय दलों के साथ गठजोड़ कर बहुमत के लिये अनिवार्य गिनती जुटाने का प्रयत्न किया जाता है। जिसके कारण इन क्षेत्रीय दलों ने केन्द्र की राजनीति में अपने पाँव पसारने शुरू कर दिये हैं।

महात्मा गान्धी से एक बार एक अमेरीकी पत्रकार ने पूछा था कि ''क्या आप बहुमत व अल्पमत के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं?'' तब महात्मा गान्धी ने कहा था– ''मैं सर्वसम्मति के शासन में विश्वास करता हूँ। अल्पमत व बहुमत तो बड़े भ्रामक शब्द हैं क्योंकि एक बार आप इनके चक्कर में पड़ जायें, तो फिर अंकगणित ही सत्ता सम्भालता है वास्तविक लोकतन्त्र की तो हत्या ही हो जाती है''[7]। गान्धी जी का यह कथन भारत की वर्तमान राजनीति के सन्दर्भ में बिल्कुल सत्य साबित हो रहा है। आज भारतीय लोकतन्त्र अंकगणित का दास बन चुका है।

सन् 1996 से भारत में क्षेत्रीय दलों के समर्थन से बहुदलीय व्यवस्था कायम हुई है। सन् 1999 से 2009 के चुनावों तक इन्हीं क्षेत्रीय दलों की बढ़ती शक्ति व उपस्थिति के कारण भारत की दलीय व्यवस्था त्रिधुवीय हो गयी है। यह त्रिधुवीय व्यवस्था भाजपा व उसके सहयोगी क्षेत्रीय दलों व काँग्रेस व उसके सहयोगी क्षेत्रीय दलों के मध्य हैं। वामपन्थियों व उनके सहयोगी दलों का तीसरा मोर्चा है।

क्षेत्रीय दलों की लोकसभा चुनावों में बढ़ती संख्या व इन्हें प्राप्त वैध मतों का निरन्तर बढ़ता प्रतिशत स्वयं ही इनकी बढ़ती शक्ति का सूचक है। द्वितीय आम चुनाव से लेकर 16वीं लोकसभा तक इन क्षेत्रीय दलों की संख्या व इन्हें प्राप्त वैध मतों का ब्यौरा नीचे दिया गया है[8]।

तलिका 1: लोकसभा चुनावों में भाग लेने वाले क्षेत्रीय दलों की संख्या व उन्हें प्राप्त वैध मत–

लोकसभा	साल	क्षेत्रीय दल	क्षेत्रीय दलों को प्राप्त वैध मत
द्वितीय	1957	11	7.60
तृतीय	1962	11	9.28
चतुर्थ	1967	14	9.69

पांचवी	1971	17	10.17
छठी	1977	15	8.80
सातवीं	1980	19	7.69
आठवीं	1984	17	11.56
नवीं	1989	20	9.28
दसवीं	1991	27	12.98
ग्यारहवीं	1996	30	22.43
बारहवीं	1998	30	18.79
तेरहवीं	1999	40	26.93
चौहदवीं	2004	51	28.90
पन्द्रहवीं	2009	42	23.60
सोलहवीं	2014	38	27.12

उपर्युक्त सारणी से सुस्पष्ट है कि द्वितीय लोकसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की संख्या 11 व इन्हें प्राप्त मतों का प्रतिशत 7.60 था वहीं 2014 तक यह संख्या बढ़कर 38 व प्राप्त मतों का प्रतिशत 27.12 हो गया। जनता के समर्थन से इनके आत्मविश्वास में व महत्त्वाकांक्षा में इतनी बढोत्तरी हो गयी है कि ये अब केन्द्र सरकार को बनाने व गिराने में अहम भूमिका निभाने लगे हैं। इसी कारण इन्हें अब राष्ट्रीय हितों का पोषण करने वाली क्षेत्रीय पार्टी कहा जाने लगा है।

इन क्षेत्रीय दलों के नेता दिल्ली पर अपना दबदबा बनाना चाहते हैं। अल्पमत सरकार में अंकगणित के घिनौने खेल के अन्तर्गत प्रत्येक छोटे से छोटा दल मोलभाव करने की स्थिति में होता है। गठबन्धन की राजनीति ने बड़ें दलों को छोटे दलों का मोहताज बना दिया है। सन् 1996 में सुखराम की 'हिमाचल विकास पार्टी' ने दो विधायकों को लेकर पाँच वर्षों तक चलने लायक स्थायी सरकार बनाने के लिये भाजपा से गठबन्धन किया था। इतना ही नहीं केन्द्र सरकार में अपने थोड़े से सदस्यों के बल पर ये महत्वपूर्ण मन्त्री पद प्राप्त करते हैं। 15वीं लोकसभा में द्रमुक व तृणमूल काँग्रेस की सदस्य संख्या क्रमशः 18 व 19 है, पर इनके सात–सात सदस्य न केवल मन्त्री पद प्राप्त किये हैं वरन् रेलवे, कपड़ा, संचार व आई टी जैसे महत्वपूर्ण विभाग भी प्राप्त किये हैं। सन् 2004 व 2009 की संप्रग सरकार में शामिल क्षेत्रीय दलों की लोकसभा में सदस्य संख्या व उनको प्राप्त मन्त्रीपद का ब्यौरा नीचे दी गयी सारणी में दिखाया गया है[9]–

2009 की लोकसभा			2014 की लोकसभा		
दल	सीटें	मंत्रीपद	दल	सीटें	मंत्रीपद
तृणमूल काँग्रेस	19	07	शिवसेना	18	01
द्रमुक	18	07	रिपब्लिकन पार्टी आफ इण्डिया	02	01
नेशनल कान्फ्रेंस	03	01	अपना दल	02	01
एमयूएल	02	01	शिरोमणि अकालीदल	04	01
			लोक जनशक्ति पार्टी	06	01

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि गठजोड़ कर बनायी गयी सरकार में क्षेत्रीय दल इतने प्रभावी हो जाते हैं कि वे अपनी सीटों के अनुपात से कहीं ज्यादा मन्त्रीपद प्राप्त करके ही सरकार में शामिल होते हैं। उसके बाद भी प्रधानमंत्री के ऊपर अपने क्षेत्रीय हितों या दलीय हितों की पूर्ति करने का दबाब बनाये रखते हैं। वर्तमान सरकार में शामिल तृणमूल काँग्रेस व द्रमुक दोनों ही सार्वजनिक क्षेत्र में विनिवेश व बीमा क्षेत्र में सुधारों पर अड़ंगा लगाते आ रह हैं। इनके नेता क्षेत्रीय नेता के तौर पर ज्यादा व केन्द्रीय मन्त्री के तौर पर कम काम करते हैं। इसी प्रकार 13वीं लोकसभा का गठन भारतीय जनता पार्टी ने 24 दलों के गठबन्धन के साथ किया था। अपने कार्यकाल के दौरान सरकार घटक दलों की मान–मनुहार करने में ही लगी रही। अगर गठबन्धन सरकार कोई सुधार विधेयक लाना चाहती है तो सहयोगी दल उसमें अड़ंगा पैदा करते हैं। अंकों के खेल की इस राजनीति में विपक्षी दलों के साथ भी अल्पमतीय सरकार गठबन्धन करने के लिये मजबूर हो जाती है। यह व्यवस्था संसदीय शासन व्यवस्था के सर्वथा विपरीत है। प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने अफसोस व्यक्त करते हुए सत्य ही कहा है कि ''अगर टीम गलत ढंग से खेल रही हो तो सरकार ज्यादा कुछ नहीं कर सकती, किसी को मैदान से बाहर करना तो दूर प्रधानमन्त्री उसे रेड कार्ड (त्मक ब्लंक) तक जारी करने की स्थिति में नहीं है[10]।''

इतना ही नहीं कई बार ये क्षेत्रीय दल सरकार में शामिल हुए बिना समर्थन देना चाहते हैं ताकि वे सरकार पर अपनी माँगे पूरी करने का दबाव बनाये रख सकें। यदि उन्हें लगता है कि उनकी माँग पूरी नहीं होगी, तो वे अपना समर्थन वापस लेने में नहीं हिचकते। अन्ना द्रमुक की नेता जयललिता ने सन् 1999 में राजग की सरकार के साथ यही किया व 2008 में वामपन्थी व टीआरएस ने संप्रग के साथ यही किया था। क्षेत्रीय दलों का यही निहित स्वार्थ अवसरवादिता को जन्म देता है जो राजनीति अस्थायित्व के रूप में प्रकट होता है।

अगर हम प्रथम लोकसभा से लेकर 16वीं लोकसभा तक विहंगम दृष्टि डालें तो स्वतः ही यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राजनीति में अवसरवादिता, अनुशासनहीनता, अपराधीकरण, हिंसा गठबन्धन सरकारों के युग में ही अधिक तेजी से पनपी है। यद्यपि यह भी सत्य है कि एक दल प्रधानता वाली बहुदलीय व्यवस्था से भारतीय राजनीति में लोकतन्त्र अपने सही रूप में पनप नहीं पा रहा था। वंशवाद व अनुशासनबद्धता ने एक दल की तानाशाही स्थापित कर दी थी। सन् 1975 में लागू आन्तरिक आपातकाल उसी का परिणाम था। क्षेत्रीय दलों के विकास से एक दल की तानाशाही पर अंकुश लगा व देश में लोकतान्त्रिक व्यवस्था कायम हो सकी। साथ ही क्षेत्रीय दलों के माध्यम से ही राज्यों के आर्थिक विकास से सम्बन्धित योजनाओं व कार्यक्रमों का क्रियान्वयन कुशलतापूर्वक हो पाया है। इन्होंने राज्यों की सवायत्तता की रक्षा भी की है जिससे भारतीय संघवाद कुशलतापूर्वक कार्य कर रहा है। कभी सरकार में शामिल होकर कभी विपक्ष में बैठकर क्षेत्रीय दलों ने सरकारी नीतियों से सम्बन्धित निर्णय करने में व सरकार पर अंकुश लगाने जैसे यह दोनों ही कार्य कुशलतापूर्वक किये हैं। जिससे भारत में संसदात्मक शासन व्यवस्था की रक्षा हो पायी है।

इतना ही नहीं ये क्षेत्रीय दल चाहे कितने भी संकीर्ण हितों पर आधारित व अवसरवादी क्यों न हों पर देश की इज्जत की रक्षा के लिये इन्होंने अपने संकीर्ण स्वार्थों का परित्याग कर देशभक्ति का परिचय दिया है। फिर यह मुद्दा चाहे सीटीबीटी का हो, या चीन द्वारा अरुणॉचल प्रदेश व सिक्किम पर दावा करने का; इन्होंने राष्ट्रीय एकता व अखण्डता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का परिचय दिया है।

पर उपरोक्त क्षेत्रीय दलों के कुछ सकारात्मक पहलू होते हुए भी यह एक कड़वा सच है कि यदा कदा ही इनमें देशभक्ति के दर्शन होते हैं। अधिकांशतः तो वे संकीर्ण स्वार्थों के आधार पर कार्य करते हैं। उनके इस वर्तमान स्वरूप ने तो विश्व के सबसे बड़े जनतान्त्रिक देश की संसद को ही लकवाग्रस्त कर दिया

लोकतन्त्र में जनता ही हर प्रश्न का उत्तर देने में सक्षम होती है। 16वीं लोकसभा के चुनाव परिणामों में क्षेत्रीय दलों की स्थिति में आई गिरावट इस बात की सूचक है कि जनता ऐसे किसी भी क्षेत्रीय दल व उसके नेता को बर्दाश्त नहीं करेगी, जो एक सीमा से अधिक अवसरवादी व महत्वाकांक्षी हों। रामविलास पासवान व लालूप्रसाद यादव के दलों की दुर्बल स्थिति इसका अच्छा उदाहरण है। साथ ही जिन क्षेत्रीय दलों के नेताओं ने विकास सम्बन्धित कार्य किये, जनता ने उन्हें अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया। जनता दल (यू) व बीजू जनता दल के कार्यों से प्रसन्न होकर जनता ने उन्हें अपना जनाधार प्रदान किया; पर जनता के फैसले के साथ–साथ क्षेत्रीय दलों की बढ़ती शक्ति व महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिये चुनाव आयोग द्वारा कठोर नियमों का निर्माण करना चाहिये जो भी क्षेत्रीय दल इन नियमों पर खरा नहीं उतरेगा उनका पंजीकरण रद्द कर दिया जाये[11]।

ऐसे क्षेत्रीय दल जिनका प्रभाव क्षेत्र एवं राज्य विशेष या एक सीमित क्षेत्र तक ही हो उन्हें लोकसभा का चुनाव लड़ने की पात्रता नहीं होनी चाहिए। वे सिर्फ राज्य विधानसभा व स्थानीय चुनावों में ही भाग लें।

गठजोड़ की राजनीति में बढ़ती अवसरवादिता पर रोक लगाने के लिये आवश्यक है कि दलों के मध्य गठबन्धन चुनाव से पूर्व ही किया जाये। ताकि वह गठबन्धन जनता से जनादेश प्राप्त करके सत्ता हथियाने के लिये किये जाने वाले बेमेल व सिद्धान्तहीन दलीय गठबन्धनों की प्रवृत्ति पर कठोरतापूर्वक अंकुश लगना चाहिये।

कई बार क्षेत्रीय दल दबाव की राजनीति बनाये रखने के लिये सरकार में सम्मिलित न होकर उसे बाहर से समर्थन देते हैं। इससे भी भारतीय राजनीति में अस्थिरता का दौर शुरूँ हुआ है। इस पर रोक लगाई जानी चाहिये।

संसदात्मक लोकतन्त्र के उन्नयन हेतु समान विचारधाराओं, नीतियों व सिद्धान्तों के आधार पर छोटे–छोटे अनेक दलों के गठन से अच्छा है कि दलीय ध्रुवीकरण की प्रक्रिया की ओर आगे बढ़ा जाये पर इसके लिये नेताओं को अपने अहं को त्यागना होगा व सच्चे मन से निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर राष्ट्रहित में सोचना होगा। दलीय ध्रुवीकरण से देश के विभिन्न क्षेत्रीय दल दो या तीन दलीय गठबन्धन में सिमट जायेंगे जिससे कोई भी एक दलीय गठबन्धन पूर्ण बहुमत से सत्ता में आ सकेगा।

इस प्रकार क्षेत्रीय दलों में कुछ कारगर सुधार करके हम भारतीय राजनीति में आई खामियों से निपट सकते हैं। जनमानस की उदासी और गिरता हुआ मनोबल हमारे राजनीतिक नेताओं व उनके दलों के लिये एक चेतावनी है। अगर हम अपनी संसद की गरिमा की रक्षा नहीं कर पाये तो भारतीय लोकतन्त्र का चरमराता ढ़ाँचा टूट भी सकता है। इसे टूटने से बचाने के लिये क्षेत्रीय दलों पर शिकंजा कसना अत्यन्त आवश्यक है तभी हम राजनीतिक अवसरवादिता, अस्थायित्व, भ्रष्टाचार जैसे दानवों से अपने देश को मुक्त कराकर, संसदीय लोकतन्त्र को सफल बना सकते हैं।[12]

सन्दर्भ

1. एस. एम. सईद, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेण्टर लखनऊ
2. डा. तिवारी रजनी, भारत में दलीय व्यवस्था और संसदीय लोकतन्त्र, अर्जुन पब्लिषिंग हाऊस, देहली, 2009.
3. डा0 कश्यप सुभाष, भारतीय राजनीतिक सिद्धांत समस्यायें और सुधार, राधा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली 2006।
4. कोठारी, रजनी, 1976 भारत में राजनीति, ओरियन्टल लागमेन, नयी दिल्ली, 2003
5. बाली सूर्यकांत, भारत की राजनीति के महाप्रष्न, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1995
6. राजकिशोर, भारत का राजनीति संकट, वाणी प्रकाषन, 1994, नयी दिल्ली।
7. दुबे अभय कुमार, राजनीति की किताब, रजनी कोठारी का कृतित्व, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003।
8. इण्डिया टुडे, जून, 2014
9. इण्डिया टुडे, जुलाई, 2014
10. डॉ. कमलेश कुमार सिंह, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
11. डा0 मोदी.एम.पी. भारतीय राजनीति की प्रवृत्तियाँ द कालेज बुक डिपो, जयपुर।
12. Yadav KK. Emergence of Political parties in India, Politics of caste and communalism, Abhyayan Publisher.